Year-9-10; 2018-19
ISSN–2231-1130

Impact Factor – 3.521(IIJIF)
●●●●VEETHIKA●●●

रामचन्द्र की शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना का स्वरूप एवं विकास

क्षमा मिश्रा*

प्रस्तावना

डॉ० रामचन्द्र शुक्ल वर्तमान हिन्दी आलोचना साहित्य के क्षेत्र में जिस लोकमंगल समन्वित रसवाद की प्रतिष्ठा की और व्यवहारिक स्तर पर जिस विवेचन विश्लेषण पद्धति की शुरूआत की उसने परवर्ती आलोचकों को भी न्यूनाधिक रूप में प्रभावित किया। शुक्ल जी से पूर्व हिन्दी आलोचना की परम्परा विशेष समृद्ध नहीं थी आचार्य शुक्ल ने उसे एक स्थिर सुदृढ़ और प्रौढ स्वरूप प्रदान किया किन्तु परवर्ती आलोचकों के लिए इस परम्परा को उससे आगे ले जाना अथवा उसमें दिशा परिवर्तन करना एक कठिन चुनौती थी। आचार्य शुक्ल का व्यक्तित्व परवर्ती आलोचकों के समक्ष एक चुनौती के रूप में खड़ा था ''किन्तु अपने पूर्ववर्ती आलोचना साहित्य की तुलना में शुक्ल जी का आलोचक व्यक्तित्व जितना विराट लगता है, उतना परवर्ती आलोचकों के सामने नही।''

आचार्य शुक्ल की सैद्वांतिक तथा व्यावहारिक समीक्षा दोनों का समापन लगभग 1940 के आसपास हो जाता है और सन 1960 के आसपास समीक्षा के विकास का एक नया युग प्रारम्भ होता है। आचार्य शुक्ल के निबंध 'कविता क्या है', 'काव्य में रहस्यवाद तथा 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' तथा उनके 'साहित्येतिहास ग्रंथ' हिन्दी साहित्य का इतिहास में स्थापित कई मान्यताओं पर परवर्ती आलोचना में अनेक विवाद सामने आए। नन्ददुलारे वाजपेयी, सा० डॉ0 नगेन्द्र तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के रूप में आलोचकों की एक बृहत्रयी शुक्ल जी के ही समय में सक्रिय थी।

मुख्य शब्द–

प्रभाववादी आलोचना, स्वच्छंदतावादी आलोचना, मार्क्सवादी या प्रगतिवादी आलोचना, मनोवैज्ञानिक अथवा अंतश्चेतनावादी आलोचना, अनुसंधानपरक आलोचना, ऐतिहासिकया सांस्कतिक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, नई समीक्षा।

''नन्ददुलारे वाजपेयी शुक्लोत्तर आलोचना के एक प्रमुख स्तम्भ हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी छायावाद के प्रथम प्रतिष्ठापक थे।'' आचार्य वाजपेयी ने शुक्ल जी के समान आलोचना के क्षेत्र में वैचारिक प्रक्रिया पर अधिक बल दिया परन्तु पर्व निश्चित किसी भी कसौटी पर रचना या रचनाकार को परखने के वे सर्वथा विरोधी थे। वे साहित्य के मूल्यांकन के लिये किसी साहित्येत्तर मूल्य को निर्णायक बनाये जाने के पक्षधर नही थे। वे काव्य अथवा साहित्य की आलोचना के सन्दर्भ में जीवन–चेतना तथा नैतिक मूल्यों के स्थान पर काव्य सौष्ठव को महत्व देना अधिक उचित समझते थे।

वाजपेयी जी ने छायावाद की प्रतिष्ठा में महती भूमिका का निर्वाह किया। उनका मानना था कि छायावादी कविता में अस्पष्टता अवश्य है, इसमें शैली शिल्प को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। इसका साधारणीकरण भी सरलता से नहीं हो पाता है और इस पर युग निरपेक्षता का आधार भी निराधार नही है, किन्तु इसके अनेक उत्तम अंश भी है, इसका अपना अनुभूति जगत है, इसमें लोकमंगल के उद्गार भी विद्यमान हैं।

वाजपेयी जी की आलोचना पद्धति विवेचनात्मक है। भारतीय और पाश्चात्य आलोचना शास्त्रों के समन्वय से उन्होंने अपनी आलोचना पद्धति का निर्माण किया। उनकी आलोचना पद्धति में व्याख्यात्मक और तुलनात्मक आलोचना पद्धति का समावेश है। उनका मानना है कि– आलोचक का मूल कार्य कला का अध्याय उसका सौन्दर्य अनुसंधान है। उनकी आलोचना काव्य में सूक्ष्मता, प्रतीक सम्पन्नता, शिल्प और कलात्मक अभिव्यक्ति को विषय महत्व प्रदान करती है। साहित्य में आलोचना की क्या भूमिका है, इसके बारे में उनकी स्पष्ट राय थी कि समीक्षा न तो रचना विशेष की अनुचरी मात्र है और न ही साहित्य को कठोरता से नियंत्रण करने वाली अधिनेत्री ही बल्कि ''वह रचनात्मक साहित्य की प्रिय सखी, शुभौषिणी, सेविका और सहृदय स्वामिनी कही जा सकती है।''

शुक्लोत्तर आलोचकों की वृहतत्रयी में दूसरा प्रमुख नाम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का है। द्विवेदी जी का साहित्य के प्रति दृष्टिकोण नैरन्तर्यपूर्ण एवं समग्रता वादी था। वे साहित्य को किसी विशेष युग, विशेष प्रवृत्ति या कवि की मनोगत चेतना की दृष्टि से देखने के पक्षधर नही थे। ''वे साहित्य की हर प्रवृत्ति को देश काल व्यापी सांस्कृतिक संदर्भ में रखकर देखने समझने के आग्रही थे।'' इसी कारण हिन्दी साहित्य को उन्होने संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य के रूप में पृथक–पृथक न देखकर समग्र रूप में समझने का प्रयत्न किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना की एक प्रमुख विशेषता उनका प्रशांत प्रस्तुतीकरण है। वे कहीं भी अपना संतुलन नहीं खोते हैं। वे कबीर को पसंद करने के बावजूद भी जब सूर या तुलसी पर अपनी लेखनी चलाते है तो भी संतुलन सम्पन्न बने रहते है। वहीं दूसरी ओर शुक्ल जी तुलसीदास को तो सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार करते है किन्तु जब कबीर, केशव, बिहारी या प्रसाद पर कलम चलाते है तो संतुलन विपन्न हो जाते है।

*शोध छात्रा ,हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

द्विवेदी जी ने साहित्य ही नही साहित्यशास्त्र पर भी अपने आलोचनात्मक विचार व्यक्त किए हैं। ये विचार साहित्य के मर्म के रूप में सामने आए। आचार्य द्विवेदी ने रस सिद्धान्त की भी ऐतिहासिक व्याख्या की। उन्होने कहा कि 'आचार्य भरत' के समय रस सिद्धान्त का जो उदात्त रूप सामने आया था, वह पंडितराज तक आते–आते ह्रासोन्मुख हो गया। अलंकारों को द्विवेदी जी रस बोधक मानते हैं। उनकी स्थापना थी कि अलंकार शास्त्र रसबोध में सहायक हैं, बाधक नहीं। ''कुछ निबंधो में उन्होने शब्द शक्तियों पर भी लिखा और छंद तत्व और लय तत्व तो उनके प्रिय और नित्य विषय रहे है।''

इस सम्बन्ध में डॉ० नगेन्द्र ने स्वंय कहा है– ''आरम्भ में ही आचार्य शुक्ल के प्रभाव वश मेरे मन में भारतीय रस सिद्धान्त के प्रति गहरी आस्था हो गयी। शुक्ल जी का मेरे मन पर विचित्र आतंक और प्रभाव रहा। मेरे अपने संस्कार शुक्ल जी के संस्कारों से सर्वथा भिन्न थे। मेरा साहित्यिक संस्कार छायावादी युग में हुआ था। शुक्ल जी सुधार–युग की विभूति थे। उनके निष्कर्षों को मानने के लिए मै बिल्कुल कविता को व्यापक अर्थ में, रस के साहित्य अथवा ललित वाङमय को मै आत्माभिव्यक्ति ही मानता हूँ। उनके प्रौढ़ तर्क और अनिवार्य शैली मेरे ऊपर बुरी तरह हावी हो जाते थे और मै यह मानने को विवश हो जाता था कि इस व्यक्ति की काव्य–दृष्टि चाहे संकुचित हो लेकिन फिर भी अपनी सीमा में यह महारथी अजेय है।''

डॉ0 नगेन्द्र रस–सिद्धान्त के विस्तार की अनंत संभावनाओं में विश्वास रखने वाले आलोचक हैं। वे रस का संबध मानव की रागात्मक चेतना या उसकी मानसिक अनुभूति से जोड़कर देखते है। रस– सिद्धान्त के विस्तार की इन्ही संभावनाओं के आधार पर ही उन्होंने हर युग की कविता के मूल्यांकन का मानदण्ड रस–सिद्धान्त को ही स्वीकार किया है।

''रस–सिद्धांत के प्रति अखण्ड विश्वास एवं ए कनिष्ठता के कारण डॉ० नगेन्द्र अन्य समीक्षा सिद्धान्तों के प्रति किंचित अनुदार हो गए हैं। वे 'नयी समीक्षा', 'सौन्दर्यवादी समीक्षा', मिथकीय समीक्षा, शैली विज्ञान', 'साहित्य का समाजशास्त्रीय', दृष्टिकोण जैसे सिद्धान्तो को आंशिक रूप से ही स्वीकार कर पाते हैं। वे पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतो को भी रस की परिधि से बाहर नहीं मानते। ''वे रस सिद्धान्त को युगानुकूल व्याप्ति देना चाहते है। इसलिए पंडितों को उनसे शिकायत है और नए लेखक उनसे क्षुब्ध है कुछ भी हो, विरोध शक्तिशाली का होता है और डॉ० नगेन्द्र आज हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में सर्वाधिक समर्थ लेखक है।''

जिस प्रकार भारतीय इतिहास के अंतर्गत 'मध्यकाल' को 'अंधयुग' माना गया है, उसी प्रकार से रीतिकालीन अथवा मध्य युगीन साहित्य को विशेष प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकी। नगेन्द्र इस बात पर क्षुब्ध होते हैं। वे रीतिकालीन साहित्य के पुर्नमूल्यांकन पर जोर देते है। वे रीतिकालीन साहित्य पर आलोचकों की वक्र दृष्टि पर प्रतिरोध व्यक्त करते है। डॉ० नगेन्द्र रीतिकालीन साहित्य को कला के दृष्टिकोण से अप्रतिम मानते है। वे कहते हैं कि कला की दृष्टि से रीतिकाव्य का महत्व असंदिग्ध है। रीतिकालीन कवियों ने सर्वप्रथम काव्य को शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया। इन कवियों ने रसवाद की प्रतिष्ठा तो की ही, मुक्तक परम्परा का भी अभूतपूर्व विकास किया डॉ० नगेन्द्र रीतिकालीन साहित्य को 'निश्छल आत्माभिव्यक्ति' का काव्य मानते हैं।

डॉ० नगेन्द्र रीतिकाव्य की व्याख्या और मूल्यांकन कलावादी दृष्टिकोण से करते हैं, वे रीतिकाव्य को रसवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा का श्रेय देते हैं। ''साहित्य में भी श्रेणी निर्धारण नगेन्द्र को प्रिय है। हिन्दी कवियों में वे 'देव' को प्रथम श्रेणी के कवियों–तुलसीदास, सूरदास और जयशंकर प्रसाद आदि में स्थान नहीं देते, क्योंकि देव ने इन कवियों की भाँति जीवन को उसकी सम्पूर्णता में ग्रहण नहीं किया है। लेकिन द्वितीय श्रेणी के महत्वपूर्ण कवियों– केशव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द में देव अन्यतम है।' 'डॉ0 नगेन्द्र छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहकर परिभाषित करते है।

''डॉ० नगेन्द्र की समग्र समीक्षा में उनकी शास्त्रीयता का पक्ष नितांत प्रबल है'' डॉ0 नगेन्द्र ने हिन्दी के अनेक कवियों तथा सिद्धान्तों पर अंग्रेजी भाषा में भी लिखा, जिससे हिन्दी की व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक समीक्षा का प्रचार–प्रसार हो सके। उनकी पुस्तक रस सिद्धान्त का अनुवाद भी कई भाषाओं में उपलब्ध है। छायावादी कवि– सुमित्रानंदन पंत तथा आधुनिक युग के दो महाकाव्य–साकेत एवं कामायनी डॉ० नगेन्द्र की व्यावहारिक समीक्षा के आधार हैं। ''डॉ0 नगेन्द्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आजीवन किसी वाद से न जुड़कर विशुद्ध साहित्यिक निष्ठा के समीक्षक रहे हैं और उन्होने संस्कृत साहित्य के विशाल काव्यशास्त्रीय वाङ्मय को हिन्दी में ले आने का जो ऐतिहासिक कार्य किया है– उसके लिए वे सदैव स्मरण किए जाते रहेगें''

अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा वे बड़े दायरे में सक्रिय रहे हैं। निराला की आलोचना का सबसे विशिष्ट पक्ष उनकी भाषा है। डॉ0 रामविलास शर्मा उनकी भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखते है– "निराला के लिए आलोचना और कविता की भाषा में मौलिक अंतर नहीं है। कविता जब कल्पनालोक छोड़कर जीवन संग्राम के निकट आएगी तब वह कोमलकांत पदावली की भूमि छोड़कर गद्य की भाषा के निकट आए गी।

'परिमल' की भूमिका भी हिन्दी आलोचना की उपलब्धि है। इसमें निराला ने मुक्त छंद का विवेचन किया है और छन्दों की मुक्ति की आवश्यकता को स्वच्छता के जीवनमूल्य से जोड़ा है। वे लिखते हैं–''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदो के शासन से अलग हो जाना है।'' निराला ने मुक्त छंद के समर्थन में परम्पराओं का प्रमाण प्रस्तुत किया, वेदों में काव्य की मुक्ति के ऐसे हजारों उदाहरण है। बल्कि 95 फीसदी मंत्र इसी प्रकार मुक्त हृदय के परिचायक ही रहे है। निराला की काव्य चेतना वस्तु, विधान, छंद सभी संदर्भो में मुक्ति की आकाँक्षा से प्रेरित है।

सुमित्रानन्दन पंत ने काव्य भाषा और शिल्प के विषय पर अपने आलोचनात्मक विचार व्यक्त किए । छायावादी काव्य की भाषा पर उन्होने 'पल्लव' की भूमिका में लिखा। ब्रजभाषा को पंत गढ़ी हुई भाषा मानते हैं और स्वीकार करते हैं कि यह भाषा परिवर्तित संवेदना को व्यक्त करने में समर्थ नहीं है। खड़ी बोली की स्वीकृति के सन्दर्भ में होने वाले विवादों की दृष्टि से यह भूमिका अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है।

महादेवी वर्मा काव्य की रचना में 'सत्य' और 'सौन्दर्य के एकीकरण को महत्व देती है। वे मानती है कि–''सत्य काव्य का साध्य है और सौंदर्य उसका साधन।'' बुद्धि और ज्ञान की अपेक्षा वे अनुभूति को अधिक महत्व देती है। 'दीपशिखा' की भूमिका में वे काव्य को उपयोगी और ललित कला जैसे वर्गीकरणों के आधार पर बाँटकर देखे जाने का विरोध करती हैं। महादेवी वर्मा की शैली आलंकारिक और चित्रात्मकता से युक्त है। वे छायावाद को करुणा की छाया में 'सौंदर्य' के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद' कहकर परिभाषित करती है।

प्रभाववादी आलोचना

आलोचना की यह प्रणाली व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत आती है। इस प्रणाली के अतर्गत सर्वप्रथम सहृदय अथवा आलोचक कृति का अनुशीलन करता है और उससे प्रभाव ग्रहण करता है। तत्पश्चात् वह इस प्रभाव की मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति करता है। यह एक व्यक्ति प्रधान आलोचना पद्धति है। इसमें रचना रचनाकार, साहित्यिक मूल्यों या रचना प्रकिया की अपेक्षा आलोचक के स्वच्छंद व्यक्तित्व की प्रधानता होती है। "प्रभाववादी समीक्षक कलाकृति से प्रभावित होकर नूतन कला को जन्म देता है।'' इस आलोचना में विषय से अधिक महत्वपूर्ण आलोचक का व्यक्तित्व हो जाता है। "इस समीक्षा में तीन तत्व अधिक प्रधान रहते हैं लेखक का व्यक्तित्व, 2–भाव प्रधानता, 3–कल्पना प्रवणता।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस आलोचना पद्धति को महत्व नही देते हैं और हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखते हैं। "इस प्रकार किसी पाठक कि हृदय पर पड़े अच्छे प्रभाव को सुन्दर तथा सरस भाषा में प्रतिक्रियात्मक रूप में व्यक्त कर देना मात्र आलोचना नही है।" इस परम्परा के आलोचकों में पद्मसिंह शर्मा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, भगवतशरण उपाध्याय, भुवनेश्वर सिंह 'माधव' प्रमुख है।

स्वच्छन्दतावादी आलोचना

द्विवेदी युगीन नैतिकता और सरलता के विरुद्ध छायावादी कवियों ने नए मानदण्ड स्थापित किए । कवि पंत के शब्दों में–''नवीन युग की नवीन आकांक्षाओं, क्रियाओं, नवीन इच्छाओं, आशाओं के अनुसार कवि की वीणा से नए गीत, नये छंद, नये राग, नई रागिनियाँ, नई कल्पनाएं फूट पड़ी।''

कवि पंत द्वारा लिखी गई 'पल्लव' की 'भूमिका' की तुलना आलोचकों ने वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज के 'लिरिकल बैलेड्स से की है। साथ ही इसे हिन्दी की रोमांटिक कविता का मेनिफेस्टो' भी कहा है। पंत की ही भाँति अन्य छायावादी कवियों ने भी अपनी रचनाओं की भूमिका के माध्यम से स्वच्छंदतावादी आलोचना को समृद्ध किया।

मार्क्सवादी अथवा प्रगतिवादी आलोचना

छायावादी कवि जीवन के यथार्थ से दूर कल्पना लोक में विचरण करता था। किन्तु जीवन के यथार्थ की उपेक्षा नही की जा सकती और स्वयं बाद के समय में 'पंत' और 'निराला' जैसे छायावादी कवियों ने भी सामाजिक यथार्थ को अपने साहित्य का वर्ण्य विषय बनाया। छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप जीवन के यथार्थ को महत्व देने वाले प्रगतिवादी काव्य की रचना आरम्भ हुई। इसके साथ–साथ आलोचना के क्षेत्र में प्रगतिवादी आलोचना का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। प्रगतिवादी आलोचना का मुख्य आधार मार्क्सवादी जीवन दर्शन है और मार्क्सवाद का यह जीवन दर्शन 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। मार्क्स के अनुसार–''वस्तु जगत ही परम सत्य है।'' मार्क्सवादी आलोचकों में डॉ0 रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान व प्रकाशचन्द्र गुप्त प्रमुख हैं।

मार्क्सवादी समीक्षा के व्यापक प्रभाव के परिणाम स्वरूप अब मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र का भी विवेचन होने लगा है। इस विषय पर शिवकुमार मिश्र कृत 'मार्क्सवादी साहित्य चितंन और कमला प्रसाद द्वारा संपादित मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र' महत्वपूर्ण प्रयास हैं।

मनोवैज्ञानिक अथवा अंतश्चेतनावादी आलोचना

हिन्दी में इलाचन्द्र जोशी, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 देवराज उपाध्याय, अज्ञेय आदि का नाम उल्लेखनीय है। इलाचन्द्र जोशी ने 'साहित्य सर्जना' लिखकर मनोवैज्ञानिक आलाचना की प्रतिष्ठा की थी। ''डॉ0 नगेन्द्र मूलतः रसवादी आलोचक है, किन्तु वे मनोविज्ञान को रसवाद का पूरक मानते है।'' डॉ० देवराज उपाध्याय ने हिन्दी कथा साहित्य की आलोचना मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से की है। रचनाकार के व्यक्तित्व और रचना के पारस्परिक सम्बन्ध के कारण इस आलोचना पद्धति पर अत्यधिक बल दिया गया।'' मनोवैज्ञानिक आलोचना मनोविश्लेषण के सहारे कथा साहित्य में पात्रों के आचरण की व्याख्या कर सकती है, वर्णित और घटित घटनाओं के आधारभूत मनोवैज्ञानिक कारणों का अनुसंधान कर सकती है, पुरूष नारी पात्रों में आद्य पुरूष और आद्य नारी के बिंबों की झलक देख सकती है।

अनुसंधानपरक आलोचना

इस शोध प्रबन्धों में बहुत सा अंश तथ्यपरक होता है, जिसे आलोचना तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु एक सुस्पष्ट आलोचना दृष्टि के अभाव में अच्छा शोध प्रबंध नहीं लिखा जा सकता। शोध का उद्योगशोध के अनुशीलता के क्रम में तत्वों और मूल्यों का भी अन्वेषण करता है। यह अन्वेषण आलोचना दृष्टि के अभाव में पूर्ण नही हो सकता। विगत वर्षों में संख्या एवं विविधता दोनों ही दृष्टियों से अनुसन्धापरक आलोचना समृद्ध और विकसित हुई है।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आलोचना

इस आलोचना पद्धति के अंतर्गत किसी कृति का मूल्याकंन इतिहास एवं परम्परा के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। कोई भी रचना अपने युग की एक अभिव्यक्ति होती है। युग विशेष की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों ने रचना एवं रचनाकार को कहाँ तक प्रभावित किया है, इसका अन्वेषण करना ही ऐतिहासिक आलोचना है। ''सर्जक कभी–कभी अपने युग को परिस्थितियों का सीधे–सीधे प्रत्यक्ष रीति से वर्णन करता है, कभी सांकेतिक रूप से यह आलोचक की विश्लेषण शक्ति और सामर्थ्य है कि सांकेतिक अर्थों में इतिहास की प्रासंगिकता सामने ला सके।''

व्याख्यात्मक आलोचना

कोई भी रचना अपने कथ्य एवं शैली संरचना से बनती है। आलोचक द्वारा बिना किसी राग द्वेष के निरपेक्ष भाव से इन दोनों तत्वों का विश्लेषण करना व्याख्यात्मक समीक्षा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस आलोचना पद्धति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– ''व्याख्यात्मक आलोचना किसी ग्रन्थ में आयी हुई बातों को एक व्यवस्थित रूप में सामने रख कर उनका अनेक प्रकार से स्पष्टीकरण करती है। यह मूल्य निर्धारित करने नहीं जाती है।'' हिन्दी में इस समीक्षा प्रणाली को लाने और विकसित करने का श्रेय आचार्य शुक्ल को ही

''हिन्दी में नई समीक्षा ठीक उसी रूप में नही आयी जिस रूप में अमेरिकी नये समीक्षकों ने उसे प्रतिष्ठित किया था। हिन्दी के नये समीक्षकों ने काव्य के सन्दर्भ में भाषा के महत्व को स्वीकार किया। उसकी सर्जनात्मक विशेषताओं को लक्षित करने की चेष्टा की। कवि के अनुभव संसार के विस्तार और भाषा संसार के प्रसार की समानान्तरता निरुपण किया।''

सन्दर्भ

1. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, डॉ0 निर्मला जैन, पृ0 सं0 50
2. आलोचना की कुछ नई दिशाएँ, डॉ0 राम प्रसाद मिश्र, पृ0 सं0 131
3. नया सा हेत्य नये प्रश्न, नन्ददुलारे वाजपेई, पृ0 सं0 27
4. हिन्दी आलोचना की बीसवी सदी, डॉ० निर्मला जैन, 56
5. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, डॉ० निर्मला जैन, पृ0 सं0 59
6. डॉ0 नगेन्द्र व्यक्तित्व और कृतित्व, डॉ० रणवीर रांग्र, पृ0 सं0 02
7. हिन्दी आलोचनाः शिखरों का साक्षात्कार, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ0 सं0 107
8. हिन्दी आलोचना का विकास, मधुरेश पृ0 सं0 127
9. हिन्दी आलोचना इतिहास और सिद्धान्त, डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ0 सं0 163
10. हिन्दी आलोचना इतिहास और सिद्वान्त, डॉ०योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ0 सं0 164
11. परिमल, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ0 सं0 16
12. पल्लव, महादेवी वर्मा, पृ0 सं0
13. हिन्दी आलोचनाः शिखरों का साक्षात्कार, डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 सं0 16
14. वही, पृ0 सं0 37
15. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृ0 सं0 6
16. पल्लव की भूमिका–सुमित्रानन्दन पंत हिन्दी आलोचनाः शिखरों का साक्षात्कार,
17. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 सं0 18
18. हिन्दी आलोचना : इतिहास और सिद्धान्त, डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ0 सं0 28
19. हिन्दी आलोचनाः शिखरों का साक्षात्कार, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ0 सं0 33